



## उत्तर-औपनिवेशिक राज्य और विकासशील देशों में राजनीतिक प्रक्रिया

डॉ० मेहराराम

रिचर्स फ़ैलो, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान भारत।

### सारांश

ऐसा राज्य जो उपनिवेशवाद के शिकंजे से नया – नया मुक्त हुआ हो। साधारणतः तीसरी दुनिया के देशों को इस श्रेणी में रखा जाता है। कई सिद्धान्तकार यह मानते हैं कि उत्तर औपनिवेशिक राज्य में विदेशी हितों का प्रभुत्व समाप्त हो जाता है, अतः उसे जनसाधारण की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बनाया जा सकता है। उत्तर – औपनिवेशिक राज्य में लोगों की नई मांगों और आशाओं के कारण जो नए द्वंद्व पैदा हो गए हैं, उन्हें शांत करने के लिए आर्थिक विकास पर ध्यान देना आवश्यक है। उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में राजनीतिक नेतृत्व का चरित्र भी बहुत ऊँचा नहीं रह जाता। जो राजनीतिज्ञ स्वाधीनता आंदोलन के दौरान कंधे से कंधा मिलाकर विदेशी ताकत से लड़े थे, अब वे और उनके उत्तराधिकारी सत्ता की प्रतिस्पर्धा में नए पूंजीपति वर्ग की सहायता पर आश्रित हो जाते हैं, यहां तक कि कुछ राजनीतिज्ञ अपराध-लोक से सहायता लेने में भी संकोच नहीं करते। नया पूंजीपति वर्ग कई गुटतंत्रों से सांठ-गांठ करके अपनी शक्ति सुदृढ़ कर लेता है और नव-उपनिवेशवाद का जाल फैलाकर उसका शोषण करता है। उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में जनसाधारण की स्वतंत्रता के लिए नए खतरे और नई समस्याएं पैदा हो जाती हैं, उन्हें सुलझाए बगैर उसकी स्वाधीनता को सार्थक नहीं किया जा सकता है, अतः विकासशील देशों में राजनीतिक प्रक्रिया को राजनीतिक सहभागिता के संदर्भ में मजबूत किया जाना चाहिए।

**मूल शब्द :** उत्तर-औपनिवेशिक राज्य, तीसरी दुनिया, आर्थिक विकास, राजनीतिक स्वतंत्रता, सहभागिता।

### प्रस्तावना

आधुनिक युग में औद्योगिक क्रांति हुई जिसने चमत्कारी प्रभाव दिखाए। समाज बदल गया और मार्क्सवादी शब्दावली के अनुसार पूंजी वर्ग का उदय हुआ जिसने बड़े-बड़े उद्योग स्थापित किए। सामंतवाद की जगह पूंजीवाद आ गया और फिर इन्हीं उद्योगपतियों ने दुनिया के पिछड़े देशों की ओर देखा ताकि कच्चा माल इकट्ठा किया जा सके और उन्हें पक्के माल में बदलकर नए बाजारों में बेचा जा सके। इन्हीं व्यापारिक कंपनियों ने एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के देशों में अपना जाल फैलाया और धीरे-धीरे इन्हीं विकसित देशों ने साम्राज्यवादी व्यवस्था स्थापित की। गुलाम देशों को उपनिवेशों में बदल दिया गया और तब मालिकों ने दासों का आर्थिक शोषण व राजनीतिक दमन किया। इसी तथ्य को लेनिन ने इन शब्दों में व्यक्त किया कि "साम्राज्यवाद पूंजीवाद का अंतिम अवस्था है।"

18वीं व 19वीं शताब्दियों तक साम्राज्यवादी व्यवस्थाएँ सुदृढ़ हो चुकी थी। लेकिन अब गुलाम देशों में स्वतंत्रता आंदोलन शुरू हो गया। राष्ट्रवादी लहर आई और मार्क्सवाद का द्वन्द्ववाद का नियम लागू हो गया। साम्राज्यवाद व राष्ट्रवाद आपस में टकराए। यह संघर्ष काफी लम्बे समय तक चले, लेकिन दूसरे महायुद्ध के बाद साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद का बहुत तेजी से पतन हुआ। एशिया व अफ्रीका के गुलाम देश स्वतंत्र होते चले गए और अब एक नई दुनिया का उदय हुआ जिसे विकसित देशों के लेखकों ने निंदनीय शब्दों में तीसरी दुनिया कहा। इन्हीं राज्यों को उत्तर-औपनिवेशिक राज्य कहते हैं। इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि स्वतंत्र होने के बाद भी वे अपनी स्वायत्तता या पहचान के लिए लड़ रहे हैं। (आर. सी. यंग)

यह ठीक है कि 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में साम्राज्यवादी या उपनिवेशवादी व्यवस्थाएँ चली गईं। लेकिन एक नए नमूने का उपनिवेश पैदा हुआ। तीसरी दुनिया के देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़े

और राजनीतिक दृष्टि से दुर्बल है इसीलिए पाश्चात्य देशों ने इन पर अपना आधीपत्य बनाए रखा। इन देशों ने विकसित देशों से सैनिक सहायता ली या विकसित देशों ने इन्हें वित्तीय सहायता दी और इस तरह ये देश अप्रत्यक्ष रूप में औपनिवेशिक शक्तियों के तले आ गए। घाना के राष्ट्रपति क्वामे एनक्रूमा ने इसी को "नव उपनिवेशवाद" कहा। इसका लक्षण यह है कि कोई राज्य दिखने में पूरा स्वतंत्र होता है लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वो किसी विकसित देशों के नियंत्रण में आ जाता है। यह स्थिति औपनिवेशिक स्थिति से बुरी है। औपनिवेशिक व्यवस्था में साम्राज्यवादी शक्ति गुलामों का शोषण करती है और उसके लिए जिम्मेदार भी होती है। लेकिन नवउपनिवेशवाद में कोई विदेशी सत्ता किसी अन्य देश का शोषण करती है और उसके लिए अपने को उत्तरदायी भी नहीं मानती (एनक्रूमा)।

तीसरी दुनिया के राज्यों को उत्तर-औपनिवेशिक राज्य कहा जाता है। यहाँ राजनीतिक का भिन्न रूप देखा जा सकता है जिसे डेविड ऐप्टर ने गैर-पाश्चात्य प्रक्रिया कहा है। अगर हम एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका के ऐसे राज्यों का बारीकी से अध्ययन करें तो उनमें कुछ विशिष्ट लक्षण देखे जा सकते हैं –

### 1. राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत

गुलाम देशों में ऐसे राज्य बने जो पहले विदेशी शक्तियों के तले थे। इसीलिए यहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन की छाप देखी जा सकती है। यहाँ के लोग अपने राष्ट्रीय नेताओं पर गर्व करते हैं और इसीलिए इन राज्यों ने ऐसी व्यवस्था अपनाई जिनके बारे में राष्ट्रीय आन्दोलन के समय सर्वसम्मति बन चुकी थी। बहुत से राज्यों ने राष्ट्रवाद से प्रभावित होकर अपने नाम ही बदल दिए। उदाहरण के लिए साइमन बोलिवेयर ने अपने राष्ट्रीय आंदोलन को सफल बनाया और इसीलिए स्वतंत्रता के बाद राज्य का नाम बोलिविया (दक्षिण अमेरिका) हो गया। अफ्रीका में गोल्डकोस्ट स्वतंत्र होने के बाद

घाना हो गया। स्वतन्त्रता के बाद भी इन राज्यों में टूट-फूट का काम चलता रहा जिसकी वजह से राज्य के टुकड़े हो गए। 1960 में कांगो बँट गया तो 1971 में पूर्वी पाकिस्तान, बांग्लादेश हो गया। इससे विदित होता है कि उपनिवेशी राज्य में राष्ट्र निर्माण व राज्य निर्माण का विकास पूरा नहीं हो सका है। (आर.सी. यंग)

## 2. अपनी पहचान के लिए संघर्ष

उत्तर-औपनिवेशिक राज्य हर तरह से स्वतंत्र है उसका अपना संविधान है, अपनी सरकार है, अपनी संसद है, अपनी न्यायपालिका है। अधिकतर देशों में किसी न किसी रूप में लोकतंत्र मौजूद है लेकिन फिर भी ये राज्य सच्चे अर्थ में पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हैं। ये राज्य यूएनओ के सदस्य हैं, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सदस्य भी हैं जैसे – आईएलओ, डब्ल्यूटीओ। लेकिन फिर भी ये राज्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी पहचान के लिए लड़ रहे हैं। कभी-कभार उत्तर बनाम दक्षिण का संवाद चलता है तो कभी दक्षिण-दक्षिण सहयोग का संवाद। इन राज्यों की यही शिकायत है कि इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय जगत में समानता नहीं मिलती। यही कारण है कि औपनिवेशिक राज्यों ने नाम में सम्मिलित होना पसंद किया।

## 3. द्विसंस्कृतिवाद

औपनिवेशिक राज्यों ने अपनी संस्कृति गुलाम देशों पर थोपी। पिछड़े देशों ने उसे अपनाया, लेकिन राष्ट्रीय आंदोलनों के दिनों में स्वदेशी संस्कृति का गौरवगान किया गया। इसलिए दो संस्कृतियाँ एक साथ प्रकट हुईं। यदि कुछ राष्ट्रीय नेताओं ने पाश्चात्यीकरण को पसंद किया तो कुछ लोगों ने अपनी स्वदेशी संस्कृति को। इसीलिए दो संस्कृतियों के मध्य टकराव हो गया। कई देशों में द्विसंस्कृतिवाद ने भयानक रूप धारण कर लिया। लोगों ने विदेशी भाषा का विरोध किया और अपनी भाषा पर बल दिया। इण्डोनेशिया, हालैण्ड के नीचे था लेकिन वहाँ के लोगों ने उच्च भाषा को छोड़कर इण्डोनेशिया भाषा बनायी। यह प्रवृत्ति अफ्रीका के देशों में विशेषकर देखने को मिलती है जहाँ केन्या के नेता निगुगी ने सांस्कृतिक विऔपनिवेशिकरण का नारा दिया। अब हंटिंग्टन ने 'सभ्यताओं के संघर्ष' की बात की है।

## 4. समाजवाद की प्रशंसा

निर्धन या पिछड़े या शोषित लोगों में समाजवाद आकर्षण का स्रोत होता है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय नेताओं ने समाजवाद की प्रशंसा की। भारत में नेहरू ने 1936 के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में कहा कि भारत की सभी सामाजिक व आर्थिक समस्याओं का समाधान समाजवाद में निहित है। स्वतंत्रता के बाद औपनिवेशिक राज्यों ने समाजवाद को अपनाए की कोशिश की क्योंकि समाजवाद के अनेक रूप हैं इसलिए तीसरी दुनिया में भी समाजवाद के कई रूप दिखे। कुछ राज्यों ने मार्क्सवाद को सराहा जैसे – उत्तरी कोरिया, उत्तरी वियतनाम, यमन, इथोपिया, अंगोला। लेकिन अन्य राज्यों ने लोकतांत्रिक समाजवाद को सराहा जैसे – भारत, किनिया, द. अफ्रीका। 1990 के बाद समाजवादी चिंतन को गंभीर धक्का लगा। इसीलिए उदारवादी प्रवृत्तियाँ उभरी और यही कारण है कि अब उत्तर-औपनिवेशिक राज्यों के सामने यही समस्या है कि समाजवाद और उदारवाद को कैसे मिलाया जाए।

एंड्रयू हेवुड लिखता है कि अफ्रीका व एशिया में जो उपनिवेश विरोधी आंदोलन चले वो समाजवाद के किसी न किसी रूप से प्रभावित थे। लेकिन हम यह भी देखते हैं कि अनेक उत्तर-औपनिवेशिक राज्यों में समाजवाद व लोकतंत्र का मिलन नहीं हो सका। परिणाम यह हुआ कि वहाँ किसी न किसी रूप में

सर्वाधिकारवाद आ गया, इसी को हंटिंग्टन ने राजनीतिक पतन कहा है। अब भूमण्डलीकरण व उदारीकरण के युग में उत्तर-आधुनिक राज्य के सामने यह गंभीर समस्या है कि समाजवाद व लोकतंत्र को मिलाने के साथ अधिनायकवाद को उभरने से कैसे रोका जाए, क्योंकि लोकतंत्र सुदृढ़ नहीं हुआ। इसीलिए सैनिक अधिकारी अवसर का फायदा उठाते हैं और सत्ता छीन लेते हैं, यह अनेक देशों में देखा जा सकता है, जैसे – पाकिस्तान, म्यांमार, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, सूडान, कीनिया, यूगांडा इत्यादि।

## 5. यूरो केन्द्रित जगत को चुनौती

प्रकृति की दृष्टि से यूरोप सबसे आगे रहा है, और आज भी है, जिसे विश्व राजनीति कहा जाता है। वह वास्तव में यूरोपीयन राजनीति थी। ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली और रूस बड़ी शक्तियों के रूप में रहे और उन्होंने दुनिया की राजनीति को अपने तरीके से चलाया लेकिन पहले महायुद्ध के बाद अमरीका उभर आया और अब यूरो-अमेरीका राजनीति ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। लेकिन दूसरे महायुद्ध के बाद तीसरी दुनिया के राज्यों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को बदल दिया। एक अमेरिकन लेखक जे.के. गलबाराइज कहता है कि अब दुनिया का इतिहास एशिया व अफ्रीका के देशों में लिखा जाएगा। उत्तर-औपनिवेशिक राज्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। भारत के नेहरू, घाना के एनक्रूमा, इंडोनेशिया के सुकर्णो, मिस्त्र के कर्नल नासिर, श्रीलंका के भंडारनायके, बर्मा के उनू जैसे नेताओं ने पाश्चात्य आधिपत्य को चुनौती दी और गुटनिरपेक्ष आंदोलन चला दिया। उत्तर-औपनिवेशिक राज्य यह नहीं मानते कि विश्व राजनीति का केन्द्र यूरोप व अमेरीका है। यही कारण है कि उत्तर-औपनिवेशिक राज्यों का पाश्चात्य के विकसित राज्यों से टकराव हो जाता है। जब 1945 में यूएनओ बना था तो उसे अमरीकी क्लब कहा जाता था लेकिन 1955 के बाद बहुत से उत्तर-औपनिवेशिक राज्य यूएनओ के सदस्य हो गए और उन्होंने महासभा को अपना मंच बनाया और तभी नीओ को लाने का अभियान चलाया। आज भी उत्तर-औपनिवेशिक राज्यों तथा विकसित राज्यों के बीच टकराव की स्थिति देखी जा सकती है।

संक्षेप में, उत्तर-औपनिवेशिक ना पाश्चात्यवादी है और ना गैर-पाश्चात्यवादी है बल्कि दोनों के बीच द्वन्द्व एवं अन्तःक्रिया है। (आर.सी. यंग)। इसे हम तीन मुख्य दिशाओं में देख सकते हैं –

(1) स्वतन्त्रता के बाद भी सच्चे अर्थ में स्वायत्तता के लिए लड़ना, (2) आर्थिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करना, (3) भूमण्डलीकरण व उदारीकरण के दौर में द्विसंस्कृतिवाद की समस्या का समाधान करना। इसी स्थिति को आर.सी. यंग ने तीन महाद्वीपवाद कहा है। इसमें कोई शक नहीं कि उत्तर-औपनिवेशिक राज्य का अध्ययन अपनी विशेष महत्ता रखता है। तुलनात्मक राजनीति के बड़े लेखक जैसे – एमण्ड, कोलमेन, एक्टर, फ्रैंक और हंटिंग्टन यही मानते हैं कि तीसरी दुनिया में शोध के लिए अपार भण्डार उपलब्ध है। उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में जनसाधारण की स्वतंत्रता के लिए नए खतरे और नई समस्याएँ पैदा हो जाती हैं उन्हें सुलझाए बगैर उसकी स्वाधीनता को सार्थक नहीं किया जा सकता।

स्वाधीनता के बाद इन देशों में आधुनिकीकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई, उसने परम्परागत जीवनशैली की जगह औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, नकदी फसल कृषि, मुद्रा-विनिमय, औपचारिक शिक्षा और जनसंपर्क के साधनों के विस्तृत प्रयोग को बढ़ावा दिया। जिससे राजनीतिक गतिशीलता एवं राजनीतिक सहभागिता की प्रक्रिया को वैधता मिली। साथ ही लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के संदर्भ में चुनाव-प्रक्रिया को पारदर्शी बनाया गया जिससे राजनीति में सेना

के हस्तक्षेप को रोका जाए। इसी कारण नए सामाजिक आंदोलनों के साथ-साथ लोकतंत्रीय आंदोलनों को बल मिला है जिससे विकासशील देशों में राजनीतिक प्रक्रिया को वैधता मिली है।

### संदर्भ सूची

1. विल किमलिका, "कंटेम्पररी पॉलिटिकल फिलोसफी – एन इंट्रोडक्शन", ऑक्सफोर्ड प्रेस, लंदन, वर्ष 1990.
2. ओ.पी. गाबा, "एन इंट्रोडक्शन टू पॉलिटिकल थ्योरी", मेकमिलन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, वर्ष 2003.
3. रजनी कोठारी, "रिथिकिंग डेवलपमेंट – इन सर्च ऑफ ह्यूमन अल्टरनेटिव", अजंता पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, वर्ष 1988.
4. मेरविन क्राफोर्ड यंग, "पोस्टकॉलोनियम स्टेट इन अफ्रीका : फिपटी इयर्स ऑफ इंडेपेन्डेंट (1960–2010)", विसकॉन्सइन पब्लिशर्स, जोहान्सबर्ग, वर्ष 2012.
5. जॉनाथन मर्फी, "गवर्नेंस, रीइसटेन्स एण्ड दि पोस्ट – कॉलोनियल स्टेट", रूटलेज पब्लिशर्स, लंदन, वर्ष 2017.
6. एस.एम. नसीम, "दि पोस्ट कॉलोनियल स्टेट एण्ड सोशल ट्रांसफॉर्मेशन इन इंडिया एण्ड पाकिस्तान", मेकमिलन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, वर्ष 2002.
7. डेनियल बेल, "पोस्ट इंडस्ट्रियल सोसाइटी" रूटलेज पब्लिशर्स, लंदन, वर्ष 1999.